

राष्ट्रवाद और उपन्यास (सन्दर्भ हिन्दी उपन्यास)

विगत तीन-चार दशक से उपन्यास को राष्ट्रवाद के विमर्श में स्रोत सामग्री के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है। राष्ट्रवाद के विमर्श को समझने के लिए किस तरह के उपन्यास को स्रोत-सामग्री के तौर पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए, इस पर विमर्शकारों की राय अलग-अलग रही है। बेनेडिक्ट एंडरसन आधुनिक राष्ट्र को यथार्थवादी उपन्यास के आख्यान की संस्कृति से जोड़कर देखते हैं। फ्रेडरिक जेमसन तीसरी दुनिया के सभी उपन्यासों को राष्ट्रीय रूपक के रूप में पढ़ने की सलाह देते हैं। इन दोनों विचारों के मत में बलाघात का फर्क है। बलाघात का यह फर्क दो तरह के समाजों के राष्ट्रवाद को संदर्भ बिन्दु बनाने की वजह से है। एंडरसन यूरोप में राष्ट्रवाद के विकास को अपने विश्लेषण का आधार बनाते हैं जबकि जेमसन तीसरी दुनिया के मुल्कों में राष्ट्रवाद के विकास को समझने का प्रयास करते हैं। यूरोप और तीसरी दुनिया की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न रही है, वहाँ राष्ट्रवाद का विकास भी अलग-अलग तरीके से हुआ। जाहिर हैं, वह अलग-अलग तरीके से समझे जाने की माँग करता है।

राष्ट्रवाद और उपन्यास दोनों आधुनिक यूरोप की औद्योगिक सभ्यता की विश्व को देन है। यद्यपि यूरोप से ही पूरी दुनिया ने इन चीजों की आयातित किया है, फिर भी अलग-अलग स्थितियों व परंपरा की वजह से इन दोनों का विकास भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग तरीके से हुआ। चूंकि इनका जन्म यूरोप में हुआ और यूरोप के सम्पर्क से ही पूरी दुनिया में फैला, इसलिए कुछ बुनियादी तथ्य सब तरह के प्रारूपों में समान है। पूँजीवाद और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की उपज 'मध्यवर्ग' इन दोनों धारणाओं के केन्द्र में है। लेकिन मध्यवर्ग का स्वरूप यूरोप और तीसरी दुनिया के देशों में भिन्न रहा है। भारत जैसे उपनिवेशों के मध्यवर्ग की विशिष्टता उसकी राजनीतिक चेतना थी। दूसरा फर्क यह था कि यूरोप में राष्ट्र-राज्य और मध्यवर्ग की आकांक्षा एक दूसरे में घुल-मिल गई थी। उपनिवेशों के मध्यवर्ग की आकांक्षा औपनिवेशिक राज्य सत्ता की आकांक्षा से टकराने लगी थी। मध्यवर्ग की आकांक्षा का यह अंतर दोनों मुल्कों के राष्ट्रवाद के प्रारूपों की भिन्नता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारत में राष्ट्रवाद इसी मध्यवर्ग की निर्मिति है। भारतीय साहित्य में उपन्यास विधा का आविर्भाव भी इसी मध्यवर्ग की राष्ट्रीय आकांक्षा की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ।

अब यहाँ सवाल यह उठता है कि पश्चिम में उपन्यास के जिस 'फॉर्म' के द्वारा राष्ट्र-राज्य की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया जा रहा था, क्या उसी फॉर्म को भारत में उसके प्रतिकार/

अनुकरण के लिए अपनाया गया ? राष्ट्रवाद की जिस भावना से प्रेरित होकर यूरोप ने पूरी दुनिया को अपना उपनिवेश बनाया, क्या राष्ट्रवाद के उसी प्रारूप से उस उपनिवेशवाद का प्रतिकार किया जा सकता था? प्रारंभिक दौर में ही भारत में एक ओर जहाँ यूरोपीय ढंग के उपन्यास और राष्ट्रवाद को अपनाया गया, वहीं दूसरी ओर अपनी 'कल्पना के राष्ट्र' और उस राष्ट्र को अभिव्यक्त करने वाले 'फॉर्म' की तलाश भी शुरू हुई। हिन्दी में प्रारंभिक दौर में तीन तरह के उपन्यास लिखे गए— 'अंग्रेजी ढंग का नॉवेल', 'रोमांस' और अद्भुत व चमत्कार प्रधान घटनाओं पर आधारित तिलस्मी व जासूसी उपन्यास। पहले किस्म के उपन्यास का 'फॉर्म' अंग्रेजी ढंग का, भाषा 'आम फहम बोलचाल' की और अंतर्वस्तु 'देशोन्नति का विचार' था। दूसरे तरह के उपन्यास के रूपबंध का आधार मध्ययुगीन रोमांचक आख्यान और गल्प था जिसे तत्कालीन 'नैरेटिव फॉर्म' में ढालने का प्रयास किया गया। इसकी भाषा संस्कृत बहुल तत्सम हिन्दी और अंतर्वस्तु परोक्ष रूप से भारतीय अतीत का गौरव गान था। तीसरे ढंग के उपन्यास की भाषा सामान्य बोलचाल की व फॉर्म 'अंग्रेजी ढंग' का और अंतर्वस्तु 'ऐय्यार' व जासूसी पात्रों द्वारा अंजाम दी गई अद्भुत व चमत्कार प्रधान घटनाएं थीं। तीनों तरह के उपन्यासों ने अपने-अपने ढंग से राष्ट्रवाद के स्वर को मुखरित किया। परन्तु आगे राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति के रूप में किस धारा का विकास हुआ, यह महत्त्वपूर्ण और गौरतलब है।

भारतीय उपन्यास के 'फॉर्म' की तलाश करता हुआ 'रोमांस' किसी प्रवाहमान धारा का निर्माण नहीं कर सका। 'अंग्रेजी ढंग का नॉवेल' ही हिन्दी उपन्यास की मुख्यधारा के रूप में विकसित हुआ। गाँधी के दौर में आकार ले रहे भारत राष्ट्र को प्रेमचंद ने 'अंग्रेजी ढंग के नॉवेल' के माध्यम से ही आम फहम भाषा में अभिव्यक्त किया। प्रेमचंद परवर्ती काल में तो यही 'फॉर्म' हिन्दी उपन्यास की मुख्य धारा बन गया। यहाँ यह प्रश्न बरबस उठ खड़ा होता है कि क्या डेढ़ दो सौ वर्षों के औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज की अंतः संरचना को, उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों को इस तरह बदल दिया कि इससे उत्पन्न अनुभवों, संवेदनाओं को धारण करने का सामर्थ्य परंपरागत रूपबंध में नहीं रह गया। क्या यही वजह नहीं है कि हिन्दी उपन्यास के सवा सौ साल की यात्रा में भारतीय उपन्यास के अपने 'फॉर्म' को गढ़ने की कोशिश ठाकुर जगमोहन सिंह के पचास साठ साल बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं और उसके तकरीबन तीस साल बाद उस कड़ी में मनोहर श्याम जोशी आते हैं।

आजादी के बाद भारत के 'सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र-राज्य' बनते ही यहाँ राष्ट्रवाद का विमर्श नया आयाम ग्रहण कर लेता है। सामान्य जन के साथ हाशिए पर पड़े अंचलों को भी राष्ट्र

की मुख्यधारा में लाने का सवाल केन्द्रीय हो जाता है। नवोदित भारत राष्ट्र-राज्य के विकास की प्रक्रिया में 'स्थान' के सवाल को (हाल के दिनों में फूँको, लेफ़ेवे जैसे चिंतकों ने इतिहास की गति को 'समय' के बजाए 'स्थान' के परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता को रेखांकित किया है) फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उठाया। राष्ट्रवाद के इस संस्करण की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अपने उपन्यास का 'फॉर्म' तो अंग्रेजी ढंग का ही चुना लेकिन भाषा और अंतर्वस्तु के द्वारा उस 'फॉर्म' में अंचल की सामूहिक स्मृति और ऐतिहासिक अनुभवों को एक साथ पिरोकर एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया।

1980 के दशक में 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' और 'मास माइग्रेशन' ने भारतीय राष्ट्र की आंतरिक संरचना में बुनियादी परिवर्तन उपस्थित किया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और मास माइग्रेशन ने भारतीय राष्ट्र-राज्य के अंदर स्थानीयता (Locality) की परिभाषा को बदल दिया। आभासी पड़ोसी (Virtual neighbourhood) की एक नई श्रेणी पैदा हो गई। मनोहर श्याम जोशी ने इन बदली स्थितियों को बड़ी कुशलता से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

सन् 1990 के दशक में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने भारत राष्ट्र-राज्य के चरित्र को बदला। राष्ट्र-राज्य 'लोक-कल्याणकारी' से 'कॉरपोरेट स्टेट' में तब्दील होने लगा। दूसरी ओर भारत राष्ट्र के विभिन्न घटकों, जो राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में अब तक हाशिए पर पड़े थे, मसलन स्त्रियाँ, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक, में अपनी अस्मिता और भारत राष्ट्र में अपनी हिस्सेदारी की माँग को लेकर नई चेतना पैदा हुई। हाशिए पर पड़े इन समूहों का अस्मितागत व अन्य समस्याओं को लेकर लिखा गया लेखन आज के हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा बन गया है। यह भावी भारत की ओर संकेत करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उपन्यास तकरीबन सवा सौ साल की यात्रा में भारत राष्ट्र के उद्भव व विकास के विभिन्न पड़ावों का सहयात्री रहा है। इस यात्रा में उपन्यास ने अपनी भाषा, फॉर्म और अंतर्वस्तु से जहाँ राष्ट्र के स्वरूप को आकार दिया है, वहीं राष्ट्र की कल्पना, उसका उद्भव, विकास और विकास की प्रक्रिया में उसके बदलते स्वरूप ने हिन्दी उपन्यास को नई भाषा, अंतर्वस्तु और रूपबंध प्रदान किया है। औपनिवेशिक सत्ता के मार्फत पश्चिम के सम्पर्क के परिणामस्वरूप हिन्दी में शुरू हुआ उपन्यास लेखन रूपबंध, भाषा और अंतर्वस्तु के स्तर पर उससे कैसा संबंध बनाता है— अनुकरण या प्रतिरोध का। क्या फॉर्म के स्तर पर अनुकरण और भाषा व अंतर्वस्तु के स्तर पर प्रतिरोध या फॉर्म के स्तर पर प्रतिरोध और भाषा व अंतर्वस्तु के स्तर पर अनुकरण? यहाँ यह सवाल भी गौरतलब है कि अन्य भारतीय भाषाओं में यह प्रक्रिया किस

तरह का शकल अख्तियार की है। इन सब सवालॉ के मद्देनजर विचार-विमर्श करने की सुविधा के लिहाज से मैंने कुछ मुद्दों को चिह्नित किया है। मुद्दे इस प्रकार हैं- उपनिवेश, राष्ट्र और उपन्यास (संदर्भ हिन्दी), भारतीय राष्ट्रवाद का प्रारंभिक दौर, रोमांस और श्यामा स्वप्न, 'अंग्रेजी ढंग का नॉवेल' और भारतीय राष्ट्रवाद, अद्भुत व चमत्कार प्रधान घटना आधारित उपन्यास, जादुई यथार्थवाद और राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद और प्रेमचंद के उपन्यास, भारतीय उपन्यास की अवधारणा, राष्ट्रवाद और हजारी प्र० द्विवेदी के उपन्यास, विभाजन और हिन्दी उपन्यास, अंचल का प्रश्न, रेणु के उपन्यास और भारतीय राष्ट्र, भारत राष्ट्र-राज्य के उपकरण, बनता-बिगड़ता अंचल और राग दरबारी, पोस्टनेशनल परिदृश्य और मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास, भारत राष्ट्र और दलितों के प्रश्न, स्त्री अस्मिता, नारीवादी उपन्यास और भारत राष्ट्र, आदिवासियों के सवाल और भारत राष्ट्र, अल्पसंख्यकों के प्रश्न, भारत राष्ट्र और हिन्दी उपन्यास। इन मुद्दों के इर्द-गिर्द ही राष्ट्रवाद और हिन्दी उपन्यास के आपसी रिश्तों को समझने का प्रयास किया जाएगा।

इस नोट्स में कई कमियाँ हैं। कुछ मुद्दे छूट गए हैं और कुछ ठीक ढंग से सूत्रबद्ध नहीं हो पाए हैं। फिर भी यह एक प्रयास है जो आपके सकारात्मक सहयोग से किसी सार्थक नतीजे पर पहुँचने की आशा करता है।